वरुथिनी एकादशी

श्रील भक्ति बल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज

वरूथिनी एकादशी की महिमा

श्रीलगुरुदेव

समय-समय पर भक्तगण मुझे दर्शन करने, भगवान की महिमा गुणगान करने तथा हरिकथा कहने का अवसर प्रदान करते हैं। हरिवास तिथि का एक विशेष वैशिष्ट्य है। यदि आप कोलकाता मठ जायें और वहां जन्माष्टमी, राधाष्टमी तथा गोवर्धन पूजा तिथि की अपेक्षा अन्य दिनों में आपको नाट्य मन्दिर में लोगों की भीड़ दिखलाई दे तब आपको पंचाग देखने की

आवश्यकता नहीं है। उस दिन निश्चित ही एकादशी तिथि होगी। भक्तगण दूर दूर से ठाकुर जी के दर्शन हेतु आते हैं। इसीलिये उन्हें मठ आने में समय लग जाता है।

यदि कोई व्यक्ति एकादशी तिथि के दिन घर में रह कर ही भजन करता है तो उसको अन्य दिनों की अपेक्षा सौ गुणा अधिक लाभ प्राप्त होता है। किन्तु यदि एकादशी तिथि को धाम में जैसे कि वृन्दावन, मायापुर या पुरषोत्तम धाम में पालन किया जाये या किसी ऐसे स्थान पर जहां एक शुद्ध भक्त द्वारा उसकी सेव्य वस्तु अर्थात् श्री विग्रह को

प्रतिष्ठित किया गया हो तब यह लाभ करोड़ो गुणा अधिक हो जाता है। हमारे परमगुरूदेव नित्य लीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर, जो कि अखिल भारतीय चैतन्य मठ तथा गौड़ीय मठों के संस्थापकाचार्य थे, जब वे कोलकाता बाग बाज़ार गौडी़य मठ में रहा करते थे, तो ये कहा करते थे कि, "मैं कलि के स्थान अर्थात् कलिकता में नहीं रहता"। पूर्व में 'कोलकाता' को 'कालिकता' नाम से जाना जाता था। बाहरी रूप से वे कोलकाता में वास कर रहे थे।

किन्तु उन्होंने कहा कि वे कोलकाता में वास नहीं करते। क्या वे असत्य बोल रहे थे? क्या इतने उच्च कोटि के सन्त मिथ्या बोल सकते हैं? नहीं, वे ऐसा कदापि नहीं कर सकते। उन्होंने ऐसा वचन इसलिये बोला क्योंकि उनके आराध्य भगवान श्री श्री गुरु गौरांग राधाकृष्ण वहां विराजित हैं तथा जिस स्थान पर भी राधाकृष्ण उपस्थित रहते हैं, उनके साथ उनके परिकर तथा धाम भी उस स्थान पर उपस्थित रहते हैं। धाम पृथ्वी पर अवतरित होता है। धाम एक चिन्मय वस्तु है, जो बद्ध जीव

तथा उनकी स्थूल इन्द्रियों के ज्ञान से परे की वस्तु है। जहां भक्त तथा भगवान रहते हैं वह स्थान धाम कहलाता है। इसीलिये भगवान कहते हैं:-

"मद् भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामी नारदा"

ओह नारद! जहां मेरे भक्त वास करते हैं तथा मेरी महिमा गुणगान करते हैं, मैं भी उसी स्थान पर वास करता हूँ।

जब चैतन्य महाप्रभु ने ईश्वर पुरीपाद के दर्शन किये तब उन्होंने कहा, "मेरी तीर्थ यात्रा सफल हो

गयी जो मुझे आपका दर्शन प्राप्त हुआ"। शुद्ध भक्तों के दर्शन करने से ही धाम की यात्रा का वास्तविक लाभ प्राप्त होता है।

इसीलिये कोलकाता के भक्त जो मठ से दूर रहते हैं, उन्होंने निश्चय किया कि "वे एकादशी तिथि पर मठ जायेंगे। पन्द्रह दिनों में एक बार एकादशी तिथि पर गुरु गृह तथा भगवान के निवास स्थान अर्थात् मठ मन्दिर जाकर पन्द्रह दिन का लाभ एक दिन में ही प्राप्त कर लेंगे"। अर्थनीति में भी कहा गया है, कम समय, कम ऊर्जा,अधिक लाभ। इस प्रकार वे पन्द्रह दिन का

लाभ एक दिन में ही प्राप्त कर लेते हैं।

वरुथिनी एकादशी के महात्म्य के विषय में बतलाते हुए कहा गया है कि एक बार युधिष्ठिर महाराज ने श्री कृष्ण से वैशाख मास के कृष्ण पक्ष में आने वाली एकादशी का नाम तथा इसके महात्म्य के विषय में जिज्ञासा की। श्री कृष्ण उत्तर देते हुए कहते हैं, "वैशाख मास के कृष्ण पक्ष में आने वाली एकादशी का नाम वरुथिनी एकादशी है। जो भक्तगण इस एकादशी का पालन करते हैं वे परम सौभाग्य तथा परम धाम को प्राप्त करते हैं। जो दुर्भाग्यशाली हैं,

चाहे वे स्त्री हों, बच्चे हों या अन्य कोई उन सभी को परम सौभाग्य प्राप्त होता है तथा उनके सभी प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। इस एकादशी का पालन करके राजा मान्धाता ने स्वर्ग की प्राप्ति की। इसी प्रकार महाराज धुन्धुमार तथा अन्य राजाओं ने भी इस एकादशी का पालन कर मोक्ष प्राप्त किया। जो फल दस हज़ार वर्ष तपस्या करने पर प्राप्त होता है वह फल केवल इस एकादशी पालन से सहज ही प्राप्त हो जाता है। सूर्य ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में जाकर एक मन सोना दान करने से जो फल प्राप्त होता है

वह फल यह एकादशी पालन करने से ही प्राप्त हो जाता है। दान भी विभिन्न प्रकार के होते हैं तथा उनमें क्रम निर्धारण है। जिस प्रकार घोड़े दान करने से श्रेष्ठ है हाथी दान करना, हाथी दान करने से श्रेष्ठ है भूमि दान करना, भूमि दान करने से श्रेष्ठ है तिल दान करना, तिल दान करने से श्रेष्ठ है स्वर्ण दान करना तथा स्वर्ण दान करने से श्रेष्ठ है अन्न दान करना। क्योंकि हमारे पूर्वज, देवी देवता तथा मनुष्य अनाज ग्रहण कर सन्तुष्ट हो जाते हैं। यह सर्वोत्तम दान है।

किन्तु अन्न दान के समान उत्तम कन्या दान है। गो दान भी अन्न दान के समान माना जाता है। किन्तु जो व्यक्ति कन्या का उपयोग उसे बेचकर धन उपार्जन के लिये या किसी अन्य घृणित कार्य के लिये करता है तो उसको सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के जल मग्न होने तक नारकीय यातनाएं सहनी पड़ती हैं तथा क्रमानुसार अगले जन्म में उसको बिल्ली की योनि प्राप्त होती है। शास्त्रों में इस प्रकार के इकत्तीस कार्यों को निषेध किया गया है।

किन्तु हम लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुगत्यजन हैं। भक्तगण

कुछ भौतिक लाभों के लिए एकादशी तिथि का पालन नहीं करते। हमें इसे ध्यान पूर्वक श्रवण करना चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति अहंकार वश कुछ दान कर रहा है तो इसका अर्थ है वह यह विचार कर रहा है कि वह उस वस्तु का स्वामी है और वह उसे दान का रहा है। जब कोई इस प्रकार का विचार करता है कि वह दान कर रहा है तो पूर्णतया गलत धारणा है। श्रीमद् भागवतम में लिखा है कि:-

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां
श्रेयोविधित्सया।

ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च
नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ॥ ६ ॥

(श्रीमद् भागवतम् 11.20.6)

भगवान कहते हैं कि, "प्रिय उद्धव, मेरी इच्छा है कि जीव पूर्ण वस्तु को प्राप्त करे तथा इसको प्राप्त करने के मात्र तीन पथ हैं- कर्म योग, ज्ञान योग तथा भक्ति योग। इन तीन पथों को छोड़कर अन्य कोई योग नहीं है।"

निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह
कर्मसु ।

तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ॥

(श्रीमद् भागवतम् 11.20.7)

ज्ञान योग प्राप्त करने वाले व्यक्ति में किस प्रकार कि योग्यताएं होनी चाहिये तथा उनमें कोन से गुण होते हैं? इसी प्रकार कर्म योग का अधिकारी कोन है, उसमें क्या योग्यताएं होती हैं? (21.56 to 21.59).

जिन व्यक्ति ने संसार से सन्यास ले लिया है अर्थात वह व्यक्ति संसार के किसी भी प्रकार के पद जैसे कि पी.एम, एम.पी, धनी

बनने की कामना या किसी प्रकार लीडर बनने की कामना नहीं रखता तथा संसार की नश्वर वस्तुओं के प्रति उनकी आसक्ति नहीं होती, वह ज्ञान योग का अधिकारी है। किन्तु यदि कोई संसारिक वस्तुओं की कामना करता है तो वह ज्ञान योग का अधिकारी नहीं है। ज्ञानी लोग स्वर्ण लोक, पितृ लोक इत्यादि की कामना से रहित होते हैं। जिनके अन्दर संसार की कामनायें होती है वह कर्मयोग का अधिकारी है। कर्म योग वाले व्यक्ति में देहात्मिक बुद्धि होने कारण अहंकार रहता है। वे कर्म योग अपनाकर शास्त्रों के

अनुसार चलने का प्रयास तो करते हैं किन्तु उनकी चेष्टायें भौतिक वस्तुओं तक सीमित रहती हैं। वे इस संसार में भी सुख चाहते हैं तथा मरण उपरान्त स्वर्ग इत्यादि लोकों में भी सुख की कामना करते हैं। किन्तु भक्त किसे कहते हैं?

यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु

यः पुमान् ।

न निर्विण्णो नातिसक्तो

भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ॥

(श्रीमद् भागवतम् 11.20.7)

भगवान कहते हैं,मत्कथादौ (जो भक्तियोग के अधिकारी हैं)उनको

मेरी कथा श्रवण करने में रुचि होगी। जिनकी मेरी कथा श्रवण में रूचि नहीं हैं, वे भक्ति योग के अधिकारी नहीं हैं। एक पुरानी बात है। तब हम मठ में नये नये आए थे। मठ के एक महात्मा ने कृपा करके एक व्यक्ति को मठ में स्थान दिया। उसे बताया गया कि मठ में उसे क्या करना है कैसे रहना है, उसने सब बात मान ली। उसे यह भी बताया गया कि दिन में दो बार होने वाली हरिकथा में अवश्य उपस्थित रहना है। आरम्भ में वह दोनों समय हरिकथा श्रवण करने आता था। किन्तु धीरे धीरे उसने हरिकथा में आना बन्द

कर दिया। वह प्रसाद का घण्टा बजने पर अविलम्ब प्रस्तुत हो जाता था। एक बार यह पूछने पर कि हरिकथा में क्यों नहीं आते? तो उसने उत्तर दिया कि हरिकथा सुनने से माथा टन टन करता है। किन्तु उत्सव का प्रसाद ग्रहण करना बहुत अच्छा लगता है। उसकी सुकृति नहीं होने पर भी वह किसी प्रकार से मठ में आया। किन्तु हरिकथा श्रवण में मन नहीं लगता। हरिकथा श्रवण करने से ही उसे सरदर्द होता है किन्तु अन्य समय पर वह व्यक्ति स्वस्थ रहता है।

हमारे शिक्षा गुरु पुज्यपाद स्वामी महाराज जब प्रचार के लिए अमेरिका गए तो वह एक ऐसे स्थान पर बैठकर कीर्तन किया करते थे जिस कारण से शीघ्र ही सब जगह उनका प्रचार हो गया। प्रचार होने के कारण एक व्यक्ति उनके पास आया। उसने महाराज से कहा कि मेरी आपसे एक प्रार्थना है कि मेरे पास अथाह धन सम्पत्ति है किन्तु समस्या यह है कि मुझे नींद नहीं आती। मैं पागल हो जाऊंगा, आप कोई उपाय बतलायें।स्वामी महाराज ने उससे कहा कि ठीक है। कल से आप मेरे स्थान पर श्रीमद् भागवतम

श्रवण करने के लिए आना। उसने पूछा कि भागवत क्या है? महाराज ने बतलाया कि यह व्यासदेव द्वारा लिखा गया अन्तिम ग्रन्थ है। यह भारत में उपलब्ध सभी शास्त्रों का सार (निचोड़) है। वह व्यक्ति उनसे पता पूछ कर चला गया तथा अगले दिन बतलाये स्थान पर पहुँच गया। बिना किसी नींद की औषधि के ही कथा श्रवण करने के आधे घण्टे पश्चात ही उसे निद्रा आ गई। उसके पश्चात उसने स्वामी महाराज का आश्रय ग्रहण कर लिया। यह बात स्वयं स्वामी महाराज ने बतलायी है। इसीलिए यह सत्य घटना है।

उस व्यक्ति को हरिकथा में निद्रा आने का भी कारण है। संसारिक व्यक्ति दिन के चौबीस घण्टे संसार की क्रियाओं में, व्यवसाय करने में तथा भौतिक वस्तुओं के लिए भागता रहता है। वह सब समय तनाव में रहता है। जिस कारण वह सुख से सो भी नहीं पाता। किन्तु हरिकथा श्रवण करने पर उसको शान्ति प्राप्त हुई। हरिकथा का वातावरण सदैव तनाव मुक्त रहता है। जिस कारण उसे शीघ्र ही निद्रा आ गयी। वह व्यक्ति अपने जीवन के अनेक वर्षों तक संसार के कार्यों में व्यस्त रहा। एक

कारण उसकी बुद्धि को कभी शान्ति प्राप्त नहीं हुई। किन्तु हरिकथा की शीतलता ने उसकी बुद्धि को शीतलता तथा शान्ति प्रदान की। इसके पश्चात उस व्यक्ति ने स्वामी महाराज का आश्रय ग्रहण किया तथा वह उनका प्रथम शिष्य हुआ। श्री चैतन्य गौड़ीय मठ कोई कर्मकाण्ड का स्थान नहीं है। किन्तु कर्मकाण्ड का उल्लेख किस कारण किया गया है? हम सभी जीव भगवान के समक्ष एक शिशु की भान्ति हैं। पूर्व समय में जब कोई शिशु अस्वस्थ हो जाता था, तब वैद्य उसे खाने के लिये एक तिक्त

(कड़वा) औषधि देता था। जिसे देख कर बचा डर जाता था तथा रोते हुए कहता कि वह तिक्त औषधि नहीं खायेगा। माता पिता की प्रार्थना पर वैद्य उनसे पूछता है कि आपके बच्चा को खाने में क्या अच्छा लगता है? वे बतलाते हैं कि इसको रसोगुल्ला अच्छा लगता है। फिर रसोगुल्ला मंगाया जाता है तथा बच्चे को दिखलाया जाता है। बच्चे के मांगने पर वैद्य कहता है की पहले तुम्हें औषधि खानी पड़ेगी उसके पश्चात तुम्हें रसोगुल्ला मिलेगा। इस प्रकार वह शिशु लालच वश उस रसगुल्ले के लिये तिक्त औषधि भी

खा लेता है तथा व्याधि मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार हम सभी जीव भी भगवान के समक्ष शिशु की भान्ति हैं। किन्तु हम इस संसार की भौतिक वस्तुओं के प्रति आसक्त रहते हैं। इसीलिये भगवान ने शास्त्रों में हमारे लिए कुछ नियम निर्धारित किये हैं कि किस प्रकार का कार्य करने पर हमें किस किस प्रकार का फल प्राप्त होगा। एकादशी तिथि पर खाने की कुछ वस्तुएं निषेध की गईं हैं। जिस प्रकार गेहूं तथा उससे बनी वस्तुएं, जों तथा उससे बनी वस्तुएं, सभी प्रकार की दालें, अन्न, सरसो तथा तिल का तेल इत्यादि वस्तुएं

इस दिन वर्जित हैं। यदि हम किसी व्यक्ति से कहें कि यदि तुम एकादशी तिथि पर अनुकल्प (फलाहार) खा के रहोगे तो तुम्हें पांच सौ या हज़ार रुपए मिलेंगे तथा दूसरे व्यक्ति से कहें कि यदि तुम निर्जला एकादशी तिथि पालन करोगे तो आपको दो लाख रुपए मिलेंगे। तब दो लाख रुपए की बात सुनकर सब भक्त बन जायेंगे तथा रुपए लेने के लिए सुबह आ जायेंगे। वे दिखाने के लिए कि मैंने निर्जला उपवास किया है डॉक्टर से इंजेक्शन लगवा कर एक दिन सुख से रहेंगे और दूसरे दिन जा कर रुपए ले लेंगे। किन्तु यह हम

भगवान से नहीं कर सकते। कुछ लोग यह विचार करके एकादशी तिथि का निर्जला पालन कर लेंगे की यदि उसे कुछ हो भी जाये तो यह दो लाख रुपए से उसके परिवार को लाभ प्राप्त होगा।हमारे गुरु वर्ग श्रील भक्ति विनोद ठाकुर ने कहा है की "यह संसार भोग और त्याग के उलझ कर रह गया है। जिस कारण सब स्थान पर अन्धकार सा छा गया है। इसलिये उन्होंने कहा है की भोग भी अच्छा नहीं है तथा त्याग भी अच्छा नहीं है। मैं भोक्ता नहीं हूँ। इसीलिये मेरा भोग करने का अधिकार नहीं है। मैं किसी भी वस्तु

का स्वामी नहीं हूँ, इसीलिये मेरा किसी भी वस्तु का त्याग करने का भी अधिकार नहीं है"। उदाहरण के लिए एक स्त्री विवाह के पश्चात अपने स्वामी (पति) के घर में प्रवेश करती है, तो वह अपने स्वामी की हो जाती है। अब स्त्री द्वारा पति की सेवा होती है अर्थात् उसकी (पति की) वस्तु द्वारा उसी की (पति की) की सेवा होती है। अब इस स्थिति में यदि स्त्री चावल, खीर आदि पकवान बनाकर तथा उन सभी पकवानों को एक थाली में सुसज्जित कर पति से कहे कि मैं आपको यह दान करती हूँ, तो क्या

वह वास्तव में दान कहलायेगा? नहीं, इसे मूर्खता कहा जायेगा। किन्तु वही स्त्री पति की वस्तुओं का उपयोग कर पति कि सेवा कर उसे अपनी मुट्ठी में कर सकती है। इस प्रकार घर का मुखिया उससे प्रसन्न हो जाता है तथा उसकी (स्त्री) सेवा से वशीभूत हो जाता है। इस प्रकार की सेवा निष्काम होनी चाहिये। उसमें किसी भी प्रकार की कोई कामना नहीं होनी चाहिये। जब तक हम में भोग की प्रवृत्ति रहेगी(कर्म) तब तक भक्ति' नहीं हो सकती तथा जब तक त्याग की प्रवृत्ति रहेगी

(त्याग) तब तक 'भक्ति' नहीं हो सकती।

जब मैं बालक था तब हमारे पिता जी हमसे कहा करते थे कि "गीता त्यागी, गीता त्यागी"। उस समय हम समझते थे कि गीता का अर्थ है, 'त्याग'। किन्तु मैं जब मठ में आया तब हमारे गुरुजी के ज्येष्ठ गुरु भ्राता श्री मद् भक्ति रक्षक श्रीधर देव गोस्वामी महाराज ने एक बार कोलकाता मठ में अपने सम्भाषण में कहा, "भोग को भी त्याग करना पड़ेगा तथा त्याग को भी त्याग करना पड़ेगा।" यह सुन कर मैं आश्चर्य में पड़ गया। इससे पूर्व इस

प्रकार का सिद्धान्त कभी श्रवण नहीं किया था। भोग का त्याग तो सुना था किन्तु त्याग का भी त्याग करने का अर्थ नहीं सुना था। तब मैं उनके कक्ष में गया तथा पूछा की आज आपने हरिकथा में को नयी बात बतलायी उसका अर्थ बताने की कृपा करें। तब उन्होंने कहा, "क्या तुम भोक्ता हो? क्या तुम्हारा भोग करने का अधिकार है?

अहम् हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभु:
एव च,

न तु माम अभिजानन्ति तत्तत्वेन
अतः च्यवन्ति ते।

अर्थात् भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं कि, "मैं ही एकमात्र भोक्ता हूँ।" तुम्हारा तो तुम्हारी देह पर ही अधिकार नहीं है। यह भगवान की अपरा शक्ति के अधीन है। तुम्हारा तुम्हारी सूक्ष्म देह पर भी अधिकार नहीं है। वह भी भगवान की अपरा शक्ति के अधीन है। तुम आत्मा भगवान की परा शक्ति के अधीन हो। वे ही हमारे स्वामी है। इस प्रकार तुम्हारा तुम्हारी देह पर ही अधिकार नहीं है तो तुम कौन सी वस्तुओं को किन्हें दान कर रहे हो। क्या इस

प्रकार दान होता है? नहीं। आप दान नहीं कर सकते। किन्तु सेवा अवश्य कर सकते हैं। जिस प्रकार एक स्त्री पति के द्रव्य से ही उसकी सेवा कर उसको वशीभूत कर लेती है, उसी प्रकार भगवान के द्रव्यों को, वस्तुओं को उनकी सेवा में नियोजित करना चाहिये।

साधु भी कभी कभी मजाक करते हैं। एक बार एक धनि व्यक्ति बाग़ बाज़ार गौडीय मठ में आकर मठवासियों की बहुत प्रशंसा करने लगा, वह कहने लगा कि आप लोग तो बहुत वैराग्यवाले हो, आप लोग मांस, मछली, अंडे इत्यादि कुछ

नहीं खाते हो। आप तो कोई नशा भी नहीं करते हो यहाँ तक कि चाय भी नहीं पीते हो, मैंने आपलोगों जैसे वैराग्य देखा नहीं। तो मठ के एक संन्यासी उस व्यक्ति को कहने लगे, "आप झूठ बोल रहे हैं, आप हम से भी बड़े वैरागी हैं।" वह व्यक्ति कहने लगा, "आप मेरे बारे में जानते नहीं है, मैं सभी प्रकार के नशीले पदार्थों का सेवन करता हूँ, घृणित अखाध्य वस्तुएं खाता हूँ। मेरे बारे में ऐसा कहना ठीक नहीं है, आपलोग बड़े वैरागी हैं, मैं नहीं हूँ। वह संन्यासी फिर कहने लगे, "आप हम से बड़े वैरागी हैं, हमने तो केवल गन्दी,

घृणित तुच्छ वस्तुओं जैसे कि द्यूतं, पानं, स्त्रियं, सुना, जीव हिंसा इत्यादि को त्याग कर दिया, किन्तु आप तो बड़ी मूल्यवान वस्तु भगवान् को त्याग करके बैठ गए तो, कौन बड़ा त्यागी हुआ? जो बड़ी वस्तु का त्याग कर देता है वह ही बड़ा त्यागी कहलाता है!"

हमारे लिए भी कुछ चीजें निषेध की गई है, हम प्रतिदिन भागवत श्रवण करते हैं, इसकी रचना किसने की है- वेदव्यास मुनि ने. वेदव्यास मुनि ने भागवतम् की कब की? सर्वप्रथम उन्होंने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सम्बंधित शास्त्रों की रचना

की। धर्म कार्य करके इस लोक और बाद में पर लोक में सुख भोग कर पाए इसके लिए धरम शाश्त्र की रचना की। धन अर्जित करने के लिए अर्थ शास्त्र तथा कामनाओं की पूर्ति के लिए काम शास्त्र की भी रचना की। संसार के व्यक्ति जो भी चाहते हैं उन सब के लिए उन्होंने शास्त्रों की रचना की फिर भी उनके हृदय में शांति नहीं है, तब उन्होंने बद्रीनारायण में जाकर उनके गुरु नारद मुनि का ध्यान किया। नारद गोस्वामी उनके सामने प्रकट हुए। वेदव्यास जी ने उनको प्रणाम किया तथा उनसे कृपा याचना की।

तब नारद गोस्वामी ने वेदव्यास जी के अंदर का भाव समझ कर उनसे पूछा, "तुम्हारी शरीर या मन सम्बंधित आत्मा कुशल तो है न?" उन्होंने वेदव्यास जी से सीधे-सीधे नहीं पूछा, तुम कुशल में हो, तुम्हारा शरीर तो ठीक है न. जैसे हम साधरणत: एकदूसरे को पूछते हैं?आत्मा तो सब समय प्रसन्न तथा शान्ति से रहती है। उसकी कुशलता पूछने की क्या आवश्यकता है? किन्तु जब यही आत्मा भौतिक तथा सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करती है तो वह सुख तथा दुःख का अनुभव करती है।

वेदव्यास जी ने उत्तर दिया," हे मुनि! श्रेष्ठ आप तो सर्वज्ञ हैं, मैंने जीवो के मंगल के लिए अनेक प्रकार के शास्त्रों की रचना की। धन प्राप्ति के लिए अर्थशास्त्र, इस लोक तथा अन्यान्य लोको में सुख प्राप्ति के लिए धर्मशास्त्र तथा कामना पूर्ति के लिए कामशास्त्र इत्यादि ग्रन्थों की रचना की है। फिर भी मुझे शान्ति प्राप्त नहीं हुई। नारद गोस्वामी गुरु हैं, वे शिष्य पर शासन कर सकते हैं। उन्होंने कहा,

जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासत:

स्वभावरक्तस्य महान् व्यतिक्रम: ।

यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो
न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥
(श्रीमद् भागवतम् 1.5.15)

तुमने जिस प्रकार की व्यवस्था की है वह सबसे नीचले स्तर का घृणित कार्य किया है। क्योंकि संसार के जीव पहले से ही धर्म, अर्थ तथा काम की ओर आकर्षित रहते हैं। नाशवान वस्तुओं की कामना दुःख का कारण है, यह जगत दुःखमय है। यहाँ दुःख की लहरें उठती रहती है, सुख का अभाव है। केवल क्षणिक समय के लिए दुःख का जो अभाव होता है,

उसे ही यहाँ सुख माना जाता है। क्षणिक समय के लिए दुःख अनुपस्थिति जैस कि, भूख लगी थोड़ा कुछ कहने को मील गया, ठण्ड लग रही है हीटर लगाया, तो क्षणिक समय के लिए दुःख जाता है और सुख का अनुभव होता है उसे ही यहाँ सुखा माना जाता है किन्तु वास्तव में सुख नामक कोई सत्ता इस संसार में है ही नहीं। सुखमय सत्ता (वस्तु) है, रसो वै सः अर्थात् भगवान्।

मत्त: परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति
धनञ्जय ।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

(गीता 7.7)

ब्रह्मणों प्रतिष्ठाहं, भगवान कहते हैं, ब्रह्म की प्रतिष्ठा का कारण भी मैं हूँ। सर्वकारण कारण गोविन्द अप्राकृत, परमानंदमय, पूर्ण सुखमय वस्तु है। वहाँ सदैव सुख की लहरें हैं, जबकि यहाँ दुःख की लहरें हैं। इस संसार से ऊपर उठेंगे तो जहाँ पर सृष्टि नहीं है वह स्थान विरजा, वहाँ दुःख है, दुःख की तरंगे नहीं है, उससे ऊपर ब्रह्म धाम में आनंद है, जिस आनंद का यहाँ पर अभाव है। किन्तु चतुसन ब्रह्मानंद में लीन थे, जब उन्होंने नारायण के चरणों में अर्पित तुलसी की सुगंध को अनुभव

किया तो वे ब्रह्मानंद को भी भूलकर भगवान् की भक्ति में मग्न हो गए। ब्रह्मानंद गोस्पद्तुल्य अर्थात् गाय के खुर से बने गढ़े में जितना जल समायेगा उतना ही है। और जिन नारायण के चरणों में अर्पित तुलसी की सुगंध से चतुसन आकर्षित हो गए, वे नारायण स्वयं भी कृष्ण से आकर्षित हो जाते हैं। गोपियों के कृष्ण के प्रति प्रेम में जो आनंद है, उसके सामने तो ब्रह्मानंद एक नगण्य कण के समान भी नहीं है।

एकबार सूर्यग्रहण के समय द्वारकाधिश कृष्ण अपने माता-पिता देवकी वसुदेव, अन्यान्य विशेष-

विशेष व्यक्ति, ब्राह्मण इत्यादि सब को लेकर, हाथी घोड़े और रथों को सज्ज करके कुरुक्षेत्र में यज्ञ के लिए पधारे। उन्होंने सब को निमंत्रण दिया किन्तु ब्रजवाशियों को निमंत्रण नहीं दिया। इससे नारद को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने कृष्ण से कहा, "ब्रजवासी आपके माता-पिता, सखा, गोप-गोपियाँ, आपके प्रति उनका जो प्रेम है उसकी संसार में कोई कोई तुलना ही नहीं, और अपने उनलोगों को ही निंमत्रण नहीं दिया, उनका क्या दोष है? वे आपसे इतना प्रेम करते है वही क्या उनका दोष है?मुझे आपके उनके

प्रति ऐसे व्यव्हार से अत्यंत दुःख हुआ है।"

कृष्ण ने उत्तर दिया," तुम सोच विचार करके नहीं बोलते हो? पुत्र कभी क्या पिता को निंमत्रन देगा? अत्यंत प्रिय सखा, गोपियाँ उनको निंमत्रण देने कि कोई आवश्यकता रहती है?वे तो मेरे अत्यंत प्रिय निज-जन है, उनको निंमत्र देने कि क्या आवश्यकता है?"

नारद कहते हैं, "किन्तु समाचार तो दिया जा सकता था कि आप यहाँ यज्ञ के लिए पधारे हैं?"

कृष्ण ने कहा, "उनके आने से तुमारा समग्र आयोजन, यज्ञ सब नष्ट हो जाएगा।"

बाद में नारद ने वहाँ समाचार पहुँचाया। यशोदा देवी, नंद महाराज सब सखा और गोपियाँ वहाँ पर पधारे । नांद महाराज कि आने कि कोई इच्छा नहीं थी क्योंकि उन्हें ऐसा लग रहा था कि उनका पुत्र अब रजा बन गया है, और वे लोग साधारण से ग्वाले हैं, इसलिए उनका वहाँ जाना उचित नहीं होगा, किन्तु यशोदा मैया उन्हें बल-पूर्वक यज्ञ स्थली पर लेकर आयीं, यह कहकर कि सब को भुला जा सकता

है किन्तु माता-पिता कोई कैसे भूल सकता है यदि आप मुझे वहाँ नहीं ले जायेंगे तो मैं भोजन का त्याग कर दूँगी। ब्रजवासीयों ने सभी प्रवेशद्वार पर जाकर प्रवेश करने का प्रयास किया किन्तु द्वारपालों ने उन्हें अन्दर प्रवेश करने नहीं दिया। उन्होंने कहा कि अन्दर भव्य यज्ञ का अनुष्ठान चल रहा है, बड़े-बड़े विशेष व्यक्ति और ब्राह्मण अन्दर है, और सबको अन्दर प्रवेश के लिए निषेध किया गया केवल जिनके पास निमंत्रण पत्र होगा उनको ही प्रवेश मिलेगा।"

तब ब्रजवाशियों ने रोना आरंभ कर दिया। यशोदा मैया ने कहा, "द्वारकाधीश कृष्ण मेरा पुत्र है।"

द्वारपालों ने कहा, "उनके माता-पिता तो अन्दर में बैठे हैं, आप कैसे उनके माता-पिता हुए, कहाँ से आये हैं आप?"

नन्द महाराज और यशोदा मैया ने बहुत मिनती की। उन्होंने कहा गोपाल हमारा प्यारा पुत्र है, कृपया उससे मिलने दीजिए।

किन्तु द्वारपालों ने उनकी बात नहीं मानी, उन्होंने कहा कि हमारे राजा तो इतने धनि हैं,उनके माता-

पिता आपके जैसे साधारण से व्यक्ति कैसे हो सकते हैं?

इसप्रकार सभी द्वार के द्वारपालों ने यही कहा और उनको प्रवेश नहीं करने दिया। तब नन्द महाराज कहने लगे, "मैंने तो पहले ही कहा था कि हमें वहाँ प्रवेश नहीं मिलेगा हमारा जाना उचित नहीं होगा।"

तब यशोदा मैया ज़ोर से क्रंदन करते हुए अपने गोपाल को पुकारने लगी, "मेरे प्यारे गोपाल तुम कहाँ हो?, मैं तुम्हारे बिना यहाँ अपने प्राण त्याग दूँगी।"

यशोदा मैया की पुकार सुनकर कृष्ण रह नहीं पाए, यज्ञ अनुष्ठान को अधुरा छोड़कर, सारे राज-पोषक इत्यादि को त्यागकर छोटे बच्चे गोपाल बन गए। और रोते-चिल्लाते हुए भागकर माता की गोद में जाकर उनसे लिपट गए।

ऐश्वर्य ज्ञानेते सब जगत मिश्रित,
ऐश्वर्य शिथिल प्रेमे नाहि मोर प्रीत।

आमारे ईश्वर माने, आपनाके हीन, तार प्रेम वश आमि, न हइ अधीन।

ऐश्वर्य भाव में प्रेम शिथिल हो जाता है, और कृष्ण ऐश्वर्य भाव के विषय वस्तु नहीं है।

मोर पुत्र, मोर सखा, मोर प्राण पति

अपनाके बड़ माने, आमारे सम-हीन्।

सेई भावे हइ आमि तहाँर अधिन ॥

माता-पिता अपने आप को मुझसे बड़ा मानते है और सखा मुझे उनसे हिन् समझते है, उनके इस प्रकार के प्रेम से मैं वशीभूत हो जाता हूँ।

माता मोरे पुत्रभावे करेन बन्धन।

अतिहीन-ज्ञाने करे लालन-पालन॥

माता मुझे अपना पुत्र समझकर अत्यंत प्रीती के साथ रस्सी से बंधन करते हैं।

सखा शुद्ध-सख्ये करे स्कन्धे आरोहण।

तुमि कोन बड़ लोक-तुमि आमि सम॥

सखा मेरे कंधे पर चढ़ जाते हैं।

प्रिया यदि मान करि करये भर्त्सन।

वेद-स्तुति हैते हरे सेइ मोर मन॥

और गोपियाँ जब मान करके मुझे भर्त्सन करती है, तो वह मुझे अत्यंत प्रिय लगता है।

ब्रजवासियों के प्रेम का विषय-वस्तु नंदनंदन कृष्ण है, और वही कृष्ण-प्रेम का वितरण करने के लिए चैतन्य महाप्रभु और श्री भक्ति विनोद ठाकुर, श्रील भक्ति सिद्धांत सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद एवं अन्यान्य महाप्रभु के पार्षद आए। हमें यह सदैव स्मरण में रखना चाहिए।

जो भक्ति आश्रय करना चाहते हैं, कृष्ण-प्रेम चाहते हैं उनके लिए कर्मकांड इत्यादि की आवश्यकता नहीं।निम्न अधिकारी-कर्माधिकारियों के लिए एकादशी महात्मय में इसप्रकार के प्रलोभन दिखाए गए हैं।

वेदव्यास मुनि ने भागवतम् के प्रथम स्कंध के सत्रावें अध्याय में लिखा कि कलि के आगमन से अधर्म प्रबल हो गया। तब एक ब्राह्मण ने आकर परीक्षित महाराज से सूचित किया कि महाराज आपके राज्य में अधर्म ने प्रवेश किया, आप स्वयं ही बाहर निकल कर उसे

देखीए। परीक्षित महाराज ने जाकर देखा कि एक राज पुरुष एक गाय को मार रहा है, और एक सांढ (बेल) पास में एक पैर पर खड़ा है। परीक्षित महाराज ने उस व्यक्ति से कहा ,"कौन हो तुम? हमारे राज्य में तुम इस प्रकार का अधर्म आचरण कर रहे हो?" उस व्यक्ति ने उत्तर दिया," मैं अधर्म हूँ (कलि का अर्थ है अधर्म, पाप)।

"मेरे राज्य में अधर्म का कोई स्थान नहीं, मैं अभी तुम्हारा वध कर दूंगा", ऐसा कहकर परीक्षित महाराज ने उसे मारने के लिए अपना शस्त्र उठाया।

तब कलि परीक्षित महाराज के चरणों में गिर गया और उनकी शरण ले ली। शरणागत को मार नहीं सकते। परीक्षित महाराज ने उसे कहा कि तुम मेरे राज्य को छोड़कर कहीं और चले जाओ। कलि ने कहा, "सम्पूर्ण पृथ्वी पर तो आपका ही राज्यत्व है, मैं कहाँ जाऊं?, कृपया आप मुझे कोई स्थान प्रदान कीजिए।"

परीक्षित महाराज ने उसे चार स्थान प्रदान किए।

द्यूतं— जहाँ पर जुआ, तास इत्यादि खेला जाता है, वहाँ तुम रहोगे।

पानं— मद्यपान, गांजा, भांग, बीडी, सिगारेट और अन्यान्य जितने प्रकार का नशा किया जाता है, वहाँ तुम्हारा वास रहेगा।

स्त्रियं— असत् स्त्री संग तथा

सुना— जीवहिंसा जहाँ होती है।

तब कलि ने कहा एक और स्थान दे द्जिए, वह एक स्थान मिलने से सब मील जाएगा। तब परीक्षित महाराज ने स्वर्ण(सोना),चांदी, धन में कलि को वास दे दिया।

श्रीलगुरुदेव